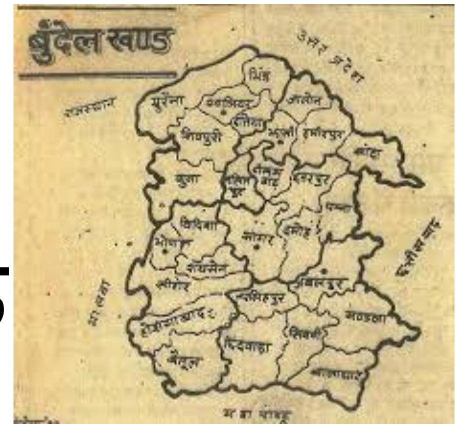
अरविन्द कुमार त्रिपाठी
द्वारा
पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन





वाद्य यन्त्र
Musical Instrument

Puratan BANDA, Bundelkhand ka Sankshipt Varnan

Arvind Kumar Tripathi

ISBN : 978-93-5906-820-6

वाद्य यन्त्र Musical Instrument

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

अध्याय शीर्षक	वाद्य यन्त्र
सर्वाधिकार	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
आइ एस बी एन/ **ISBN**	978-93-5906-820-6
प्रकाशक	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक ग्राम – अछरौन्ड, बान्दा – 210 001 उत्तर प्रदेश
मूल्य	निःशुल्क, पुस्तक मित्र को देना
सन्स्करण	प्रथम, 01 अप्रैल 2020
आवरण/मुखपृष्ठ	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
शब्द – संयोजन	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
मुद्रक	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
सन्दर्भ/साभार/सौजन्य	अध्याय **Reference** देखे

Chapter Heading	**Musical Instrument**
Copyright @	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
ISBN	**978-93-5906-820-6**
Publisher	**Arvind Kumar Tripathi** **Village - Achharaund** **Banda - 210 001** **Uttar Pradesh**
Price	**Free, Circulate to Friends**
Edition	**First, 01 April 2020**
Cover Main	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
Word Compositor	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
Printer	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
Reference/ Gratitude/ courtesy	**Peruse Chapter - REFERENCE**

वाद्य यन्त्र Musical Instrument

पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड – लोक वाद्य के रूपों का संक्षिप्त वर्णन

लोक वाद्य

लोक सन्गीत की सहजता और उसका सौन्दर्य किसी से छिपा नहीं है। सभी वर्गो की भाषा कला और सन्स्कृति एक दूसरे से भिन्न होती है। भिन्न–भिन्न अवसरों पर भिन्न–भिन्न अभिव्यक्तियों के लिए लोक में अनगिनत वाद्य यन्त्र पाये जाते हैं। आदि मानव ने जब समुद्री लहरों की गति में ध्वनि, वर्षा की बून्दों में घुँघरूओं की आवाज, बादलों के गर्जन में गंभीर घरघराहट सुनी होगी, तब इन्हीं ध्वनियों का अनुकरण कर उसने भिन्न–भिन्न आवाजों को अपने मुँह से निकाला होगा। खुश होकर ताली बजाई होगी। अनायास पत्थरों के टुकड़ों को आपस में बजाया होगा और शायद तन्मय होकर भीगते पानी में नृत्य भी किया होगा।

स्वरों की तन्मयता व भिन्न–भिन्न लय की गति पर गुनगुनाते एवम् थिरकते उसके पांव उत्तरोतर विकास का क्रम बन गये। लोक के अत्यधिक समृद्ध होने पर वेद शास्त्र आदि की रचना हुई है। अतः सर्वविदित है कि शास्त्रीय सन्गीत की उत्पत्ति लोक सन्गीत से हुई, तो निश्चय ही लोक सन्गीत अपने आप में पूर्ण होना चाहिए तभी लोक सन्गीत का निर्माण स्वभाविक है। इसको समझकर जब हम विश्लेषण करके नियमबद्ध करते हैं तब वह लोक से हटकर शास्त्रीय रुप धारण करता है।

इस प्रकार शास्त्रीय सन्गीत सम्भवतः निश्चय ही अपने आप में पूर्ण वस्तु हो जाता है लेकिन वह मूल ''लोक'' रूप से अधिक सुसन्स्कृत व व्यवस्थित होता है।

बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड कला एवम् सन्स्कृति का गढ़ रहा है। यहाँ लोकगीत, लोकवाद्य तथा लोकनृत्य लोक जीवन के अंग रहे हैं। लोक वाद्यों का प्रयोग, लोकगीत, तथा लोक नृत्यों में सन्गत करने एवम् स्वतन्त्र रूप से भी किया जाता है। लोकजन आडम्बरहीन सहज होता है और सहज उपलब्ध वस्तुओं एवम् उपेक्षित वस्तुओं से वाद्यों का निर्माण भी कर लेता है, जैसे– गोल तुम्बे से एक तारा, बांसों से बांसुरी व नरकुल, अलगोजा, आम की गुठली से पपीरी, ताड़ व बरगद के पत्तों से पिपहरी। यहाँ तक की घरेलू वस्तुएं जैसे–लोटा, थाली, सूप, चलनी, चिमटा, कटोरा, घड़ा, ताली एवम् चुटकी आदि वाद्यो का रूप ले लेती हैं। चकिया की घरघराहट उनके गीतों का आधार स्वर बन जाता है। मूसल की धमक, चूड़ियों की खनक, ढेकली का स्वर, पैर की पायल आदि ध्वनियाँ उनके गीतों के वाद्य यन्त्र बन जाते हैं। अतः कहना न होगा कि प्रत्येक स्थान पर गाने वाले के लिए बुन्देली लोक जीवन में प्रकृतितः वाद्य उपस्थित हो जाते हैं।

बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड के लोक जीवन में काल, स्थान तथा जाति के अनुसार गीतों के अनुरुप वाद्य परिवर्तित होते रहते हैं। यहाँ के लोकजीवन में हमें वाद्यों के दो मुख्य स्वरूप मिलते हैं। मनुष्य की क्रियाएँ ही वाद्य का रूप धारण कर लेती हैं जैसे–मूसल चलाने से उत्पन्न ध्वनि, इनकों हम क्रिया वाद्य भी कह सकते हैं। दूसरे प्रकार के वाद्यों को वाद्यों के स्वरूप में ही पहचानते हैं, जैसे ढोलक, नगड़िया आदि।

लोक वाद्य सन्गीत के साथ सन्गत देने वाले मात्र उपकरण ही नही, अपितु स्वतन्त्र रुप से बजाये जाने लगे और इन कथित अर्थविहीन किन्तु अनुभूतिपूर्ण एवम् रसानुभूतिपूर्ण बोलों में मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति होती है। अतः कहना न होगा कि लोकवाद्यों से ही शास्त्रीय वाद्यों का जन्म हुआ है। ''छत्तीस वाद्य यन्त्रों का उल्लेख मध्यकालीन भारत में हुआ है''

बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक प्रचलित लोक वाद्य ढोलक है। हर दस पांच परिवारों के बीच ढोलक की उपलब्धता इसकी लोक व्याप्ति का प्रमाण है। महिलाओं में ढोलक वादन की निपुणता सहज ही है। नवविवाहिता ससुराल आने के बाद प्रथम बार जिस सामूहिक मंगल गायन के बुलौआ कार्यक्रम में भाग लेती है उसे दादरा कहते हैं। इसमें नव विवाहिता को स्वयम् ढोलक बजाकर दादरा (लोक गीत) गाने की परम्परा है। उल्लासमय पर्वो का मंगल वाद्य रमतूला है। वधु के आगमन अतिथियों के स्वागत और सम्मान के अवसर पर इसके वादन की लोक परम्परा है।

इसके अतिरिक्त बांसुरी, नगड़िया, नगाड़ा, नक्कारा, हुड़क, चंग. पखावज, मिरदंग/मृदंग, झांक, मंजीरा, चिमटा, कसेरू तथा चटकोला लोकवाद्यों का प्रचलन है। उपर्युक्त ताजवाद्यों के समवेत–वादन की ताल–वाद्य–कचैरी में बुन्देली लोकसन्गीत का अद्भुत स्वरूप देखने को मिलता है।

बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड के लोकगीतों एवम् लोकनृत्य–

गीतों के साथ बजाये जाने वाले लोक–वाद्यों की वादन शैली बजौटी

देशी सन्गीत के विकास की पृष्ठभूमि लोक–सन्गीत है। भाव रस और ध्वनि की धारणा भारतीय कला की एक विशेषता है। ये धारणायें लोक कलाओं में कलाकारों एवम् श्रोताओं के मन को अनुरन्जित करती हैं। श्री मतंग द्वारा रचित वृहद्देशी ग्रन्थ देशी सन्गीत का प्रमाणिक एवम् प्राचीन ग्रन्थ है।

लोकवाद्य, लोक सन्गीत एवम् लोक नृत्य का समुच्चय ही लोक सन्गीत है। इसमें किसी प्रकार का कोई बंधन नही होता है। अलग–अलग प्रान्त के अनुसार तथा अवसरों के अनुसार लोक भजन, अचरी, चैती, फाग, सन्स्कार गीत आदि प्रकारों तथा सैरानृत्य, दिवारी, राई, ढिमरियाई ,जवारा आदि की रचना की जाती है। गीत प्रकारों एवम् नृत्यगीत प्रकारों के साथ सन्गत करने में लघुतालों का या निश्चित छोटी–छोटी मात्रा के बोल समूहों का वादन होता है। ऐसे वादन में तालों के शास्त्रीय नियम का पालन नही होता है। बल्कि गीत के वजन के अनुसार वाद्य की बजौटी होती है। यद्यपि लोक सन्गीत के कई गीत प्रकारों के साथ समान मात्राओं का तथा समान खण्डों का निर्वाह होता है। तथापि गीत प्रकारों के वजन में अन्तर होने से वाद्यों की बजौटी में अन्तर आ जाता है।

"लोक धुनें लयबद्ध होती हैं।" लय सूचक कोई वाद्य लोक धुन गाते समय न बजाये जाने के कारण ऐसा आभास होता है कि केवल धुनों में स्वर का महत्व है। परन्तु अधिक ध्यान दिया जाये तो लय स्पष्ट दिखाई देती है। नृत्य के साथ जो धुनें गायी जाती हैं, उनमें लय ढोलक की सन्गति के कारण स्पष्ट व्यक्त होती हैं।

लोक धुनों में प्रायः दो प्रकार की लय दिखाई देती है। पहले समान भाग की लय, जो सरल होती हैं और दूसरी क्लिष्ट विभाजन की लय जिसके विभाग असमान होते हैं।

लोक गीतों अथवा ग्राम गीतों के साथ अधिकतर लय व ताल दिखलाने वाले वाद्यों का ही उपयोग अधिक हुआ है। स्वतन्त्र वादन का विकास लोकसन्गीत में कम दिखाई देता है।

लोक सन्गीत में स्वतन्त्र गायन से अधिक सामूहिक गायन का महत्व है और इसमें स्वर की अपेक्षा लय का भी अपेक्षाकृत कुछ अधिक प्रभाव दिखता है।

लोकवाद्यों में अधिकतर देखने को मिलता हैं कि लोकगीतों के साथ लयवाद्यों का प्रयोग करने वाले वादकों को तालशास्त्र का विधिवत ज्ञान तक नहीं होता फिर भी वे इतनी सुन्दरता एवम् चतुरता से सन्गत करते हैं कि आश्चर्य होता है। यद्यपि उन्हें शास्त्र का ज्ञान नहीं होता है लेकिन शास्त्र भी ग्रामीणों द्वारा स्वरचित लयों द्वारा ही बनें है। वे लोकगीतों एवम् लोकनृत्य गीतों के साथ 2 मात्रिक, 3 मात्रिक, 4 मात्रिक कभी कभी 2–3 या 3–4 मात्रा काल खण्डों का निर्वाह इतनी श्रेष्ठ लयात्मकता के साथ करते हैं कि अच्छे–अच्छ सन्गीत शास्त्रज्ञ व तालशास्त्रज्ञ आश्चर्यचकित हो वाह–वाह कर बैठते हैं। जबकि इन लोकवादकों को तालों के बोलों की जगह– चकई क चकदुम या बकरी की तीन टांग (ये इनकी तालों के बोल हैं) भी कहते सुना गया है।

बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में लोकसन्गीत में प्रयुक्त होने वाले घन व अवनद्ध वाद्यों में ढोलक, मंजीरा, ढप, ढफली, झांझ, करताल, ढाक, धौंसा, नगाड़ा, तांसा, घट, लोटा, चिमटा आदि–आदि हैं। ढोलक इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ढोलक के वादन में अद्भुत विकास दिखाई देता है। कई–कई ढोलक वादक तो तबले के बाज को भी ढोलक पर निकाल कर चमत्कृत कर देते हैं। किन्तु लोकगीतों में ढोलक पर ही सरल लय–ताल दिखाना पर्याप्त है।

चतुर्भुज दास कथित खटऋतु की वार्ता में 36 वाद्य–यन्त्रों का उल्लेख हुआ है–

1 वीना	2 बीन	3 मुरली	4 अमृत कुण्डली	5 जलतरंग	6 गगनभेरी
7 धौंसा	8 दुन्दुभी	9 निसान	10 नगाडा	11 शंख	12 घंटा
13 मुहचंग	14 शिंगी	15 खंजरी	16 ताल	17 षटताल	18 मंजीरा
19 मुहरि	20 घाटी झालर	21 ढोल	23 ढप	23 डिमडिम	24झांझ
25 मृदंग	26 गिडगिड	27 पिनाक	28 रबाब	29 जंत्र	30 शहनाई

वाद्य यन्त्र **Musical Instrument**

31 श्रीमण्डल	32 सारन्गी	33 दुधारी	34 करताल	35 तुरही	36 किन्नरी

यद्यपि पं0 तानसेन का वर्गीकरण शास्त्रीय वाद्यों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। परन्तु इसकी सार्वभौमिकता एवम् लोकप्रियता ने सम्पूर्ण वाद्यों (लोक एवम् शास्त्रीय) को अपने पाश में समेट लिया है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड के लोक वाद्यों का वर्णन उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में करना अधिक उचित है।

(क) तंतु या तन्त्री वाद्य

तार या तंतुओं से बने होने के कारण इसे तंतु या तन्त्री वाद्य या तत् वाद्य कहते हैं।

केंकडिया

यह तंतु वाद्य अति प्राचीन है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में इसका उपयोग लोकगाथाओं को गाते समय किया जाता है। इसे बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में रूं–रूं के नाम से भी जाना जाता है। नारियल के आधे हिस्से को काटकर उस पर चमड़ा चढ़ा दिया जाता है। नारियल के खोल में लगभग एक डेढ़ फुट लम्बे बॉस को लगा दिया जाता है। बांस की ऊपरी खून्टी से नारियल तक घोड़े के बाल बंधे होते हैं तथा एक पतला तार भी बंधा होता है। चर्म–अवनद्ध हिस्से के बीच एक लकड़ी का टुकड़ा लगा होता है जो इस वाद्य को चढ़ाने–उतारने के काम आता है। घोड़े के बालों से बंधे गज से ये सारन्गी जैसा बजाया जाता है। इसे बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड के ढिमरियाई लोक नृत्य के साथ भी बजाते हैं।

तम्बूरा (एकतारा)

एक तार वाले तत् वाद्य को एक तारा तथा चार तार वाले को चौतारा या तम्बूरा कहा जाता है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में साधु–सन्त तथा जोगी भजन गाते समय इसे बजाते हैं। गोल कद्दू या तुम्बे के खोल में लगभग दो या ढाई फुट लम्बा एक बान्स का डण्डा लगा दिया जाता है। तुम्बे के ऊपरी भाग को काट कर बकरी के चमड़े से मढ़ दिया जाता है। बाँस के ऊपरी हिस्से में लकड़ी की खून्टी होती है। उस खून्टो से लेकर बांस के निचले हिस्से में एक तार बान्ध दिया जाता है। तार को ऊपर वाली खून्टी से चढ़ाया, उतारा जाता है तथा उंगलियों से तानपूरा जैसा बजाया जाता है। एकतारा एक सुर में बोलता है।

सारन्गी

बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड के लोक नाट्य, नृत्य एवम् गायन में सारन्गी का प्रयोग प्रमुख वाद्य के रूप में होता है। यह जोगी जाति जो भजन, स्तुति गाते, भिक्षाटन हेतु आते रहते हैं, का विशेष वाद्ययन्त्र है। सागवान की लकड़ी से बनी इस सारन्गी में 26 तार होते हैं, जो इसके माथे में स्थित खून्टियो से बंधे होते हैं। ऊपर की मोटी ताँतें बकरी की आंतों की बनी होती हैं। ताम्बे या स्टील की बनी तेरह तुरमों को चार बड़ी खून्टियों में बान्ध दिया जाता है। घोड़े के बालों से बन्धे गज(धनुष) द्वारा इसे बजाया जाता है। लोक तथा शास्त्रीय सगीत में ये समान रूप से प्रचलित है।

डुगडुगी

यह वाद्य इकतारा जैसा ही होता है। इकतारे में तुम्बी का प्रयोग करते है लेकिन इसमें टीन के डिब्बे का। टीन के डिब्बे के बीच में एक डेढ़ फुट लम्बा बांस का टुकड़ा लगा दिया जाता है। बांस के ऊपरी हिस्से में एक खून्टी लगी होती है। उस खून्टी से डिब्बे के बीच एक लोहे का तार कसा होता है जिसे उंगलियों से बजाते हैं। इसकी ध्वनि मधुर होती है। इस वाद्य को बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड के लोग बड़ी तन्मयता से बजाते है।

(ख) अवनद्ध वाद्य

वे वाद्य जो चमड़े से मढ़े होते हैं और चमड़े पर आघात करके स्वर उत्पन्न करते है, वे अवनद्ध वाद्य की श्रेणी में आते हैं। अन्दर से खोखले तथा ऊपर व मुख पर चमड़े से मढ़े होने के कारण अवनद्ध अथवा वितत् वाद्य कहलाते हैं। अवनद्ध लोकवाद्यों में ढोलक, मृदंग, ढोल, ढाक, हुड़क, डमरू, डेहरू, ढपली, ढपला, तांसा, धौसा, नगड़िया, नगाड़ा,

डिग्गी, नौबद, चंग, खंजड़ी, नाहर, धौंकनी, आदि वाद्यों का प्रयोग बुन्देली परिवेश में विभिन्न अवसरों पर किया जाता हैं।

ढोलक

बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड के लोकवाद्यों में ढोलक सर्वप्रचलित तथा सर्वप्रिय लोकवाद्य है। के0 वासुदेव शास्त्री जी के अनुसार – गायन के पीछे ढुलकती हुई चलने के कारण इस वाद्य ने ढोलक का सम्बोधन पाया।

लोकगीतों, नृत्यों तथा नाट्यों में इसका सर्वाधिक प्रयोग होता है। आल्हा, सोहर, होली, चैता आदि में स्त्री पुरूष इस वाद्य का प्रयोग समान रूप से करते हैं। ढोलक शीशम, सागवान, आम या बीजा की लकड़ी का खोल होता है जिसका दाहिना मुख, बायें मुख की अपेक्षा व्यास में कुछ मोटा तथा बीच में अपेक्षाकृत उठा होता है। इसके दोनों पार्श्वो में बकरी का चमड़ा मढ़ा होता है। बायी ओर का चमड़ा दायीं ओर की अपेक्षा कुछ मोटा होता है। सूत की डोरी से बायां तथा दायां मुख आपस में कसा होता है। रस्सी पर लगे लोहे या पीतल के छल्लों की सहायता से इसे चढ़ाया जाता है। ढोलक के मुख पर स्याही लगी होती है। इसको दोनों हाथों से बजाते हैं। इसकी ध्वनि बहुत दूर तक जाती है।

मृदंग (पखावज)

यह मृदंग कहा जाने वाला वाद्य ढोलक जैसा ही होता है। यह एक अति प्राचीन अवनद्ध वाद्य है। प्राचीन ग्रन्थों में मृदंग आदि अवनद्ध वाद्यो की उत्पत्ति के संबंध में आख्यान प्राप्त होते हैं, एक मत के अनुसार – "शिव ने त्रिपुरासुर विजय पर जो नृत्य किया, उसमें सन्गीत देने के लिए ब्रह्मा ने एक अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया, जिसका ढाँचा मिट्टी का था, अतः उसे मृदंग कहा गया। शिव–पुत्र गणेश ने सर्वप्रथम इस वाद्य को बजाया। इसकी प्राचीनता को श्री नारायण गर्ग ने लिखा है कि– यह भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के पुष्कल वाद्य पखवाज का अपभ्रंश है जो कालान्तर में पखावज बन गया।

1, 2

यह वाद्य शीशम, आम, सागौन, बीजे की लकड़ी का लगभग 20 इंच या दो फुट का खोल होता है। बांए मुँह की अपेक्षा दाहिने मुंह का व्यास छोटा होता है। बीच का व्यास अधिक होता श्है। दोनों मुंह बकरे के चमड़े से आच्छादित होते हैं। छोटे मुख की ओर स्याही लगी रहती है। स्वर ऊँचा–नीचा करने के लिए बड़े मुख की ओर गुंधा हुआ आटा बजाते समय आवश्यकतानुसार चिपका दिया जाता है। इसके ऊपर रस्सी (बद्धी) में लकड़ी के गुटके लगाए जाते हैं। बुन्देली जन राई, कांडरा, जवारे आदि नृत्य गीतों के साथ इसको बजाते हैं।

ढोल

ढोलक की अपेक्षा इस वाद्य का मुख चौड़ा होता है अर्थात् ढोलक का बड़ा रुप ही ढोल कहलाता है। रामदल, अखाड़े, धार्मिक या सांस्कृातिक वैवाहिक अवसरों पर पंचट(बांस की आधी इंच चौड़ी डेढ़ फुट की खपच्ची) एवम् डण्डी से ढोल वादन करते हैं। डेढ—दो फुट लंबे तथा 10–12 इंच व्यास लकड़ी का घेरा जिसमें एक ओर पतला तथा दूसरी ओर मोटा चमड़ा मढ़ा होता है। मुहम्मदीय–मुहर्रम के त्यौहार का यह मुख्य वाद्य है।

ढाक

यह डमरू या हुड़क जैसे आकार–प्रकार का तथा उससे बड़ा होता है। यह पीतल की खोल जिसके दोनों मुंह पर बकरे का चमड़ा रस्सियों की सहायता से कसा होता है। बजाने वाले बैठकर दोनों पंजों के उपर कपड़ा रख इसे बजाते हैं तथा दोनों पैरो के अंगूठे में इसके ताने–बाने की रस्सी को फंसा लेते हैं। बीच की बड़ी रस्सियों को दोनों घुटनों में डाल पतली घुमावदार लकड़ी से चमड़े पर आधात करते हुए पंजों में फंसी रस्सी को नीचे–ऊपर करते है जिससे घुटनों में फंसी रस्सियों में खिचाव के कारण गूंज पैदा होती है। इसे डफ का बड़ा रूप भी कहा जाता है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का प्रयोग कारसदेव की गोटें, कन्हैया गाते समय या भगत लोग अपने इष्ट को प्रसन्न करने के लिए करते हैं।

बंगाली ढाक एक प्रकार का ढोल ही है। इस वाद्य का बंगाल में विशेष प्रचार है, जहाँ दुर्गा पूजा के अवसर पर इसकी भीषण ध्वनि सर्वत्र सुनाई पड़ती है। इसे बायें कन्धे में पीछे ओर लटकाकर दोनो हाथों में बाँस की

खपच्चियाँ लेकर केवल दक्षिण मुख का वादन जाता है। इसका स्वतन्त्र वादन होता है तथा इसमें खेमटा ताल के अगणित रूप बजाये जाते है। इनका प्रचलित रुप निम्नवत् है।

1	2	3	4	5	6
धाग	घिना	धिन	धाग	तिना	तिन

हुड़क

हुड़क डमरू की आकृति का पर ढाक व डमरू से बडा वाद्य यन्त्र होता है। एक ओर से हाथ से बजाने के कारण यह यह इन वाद्यों से भिन्न होता है। ढाक की रस्सी को पैर के पंजों तथा घुटने में लगाकर लकड़ी से बजाते हैं। इसकी रस्सी को बांये कंधे में फंसाकर तथा बायें हाथ से इसे बीच में पकड़कर दाहिने हाथ से बजाते हैं। इसे देहकी भी कहते है।

बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड की कहार जाति का यह प्रिय वाद्य है।

डमरू

श्री कृष्ण की वंशी, सरस्वती की वीणा तथा शंकर के डमरू को हिन्दू धर्म ग्रन्थों में आध्यात्मिक महत्व प्रदान किया गया है। कहते हैं कि ताण्डव नृत्य के समय शिवजी डमरू बजाते हैं। नन्दिकेश्वर कारिका के अनुसार– "भगवान शंकर के डमरू से व्याकरण के चौदह सूत्र उत्पन्न हुए– ये महेश्वर सूत्र समस्त वाङमय तथा इनमें प्रदर्शित स्वरवर्ण सन्गीत स्वरों के आधार हैं। स्वर–वर्णों का सांगीतिक रूप भी है। अ, इ, उ, को क्रमशः षड्ज, रिषभ, गान्धार भी कहा गया है।"

शिवजी का डमरू जग प्रसिद्ध है। शिवालयों की आरती हो, चाहे मदारी का खेल, डमरू की डम–डम के अभाव में अधूरे ही लगते है। लोक जीवन में यह वाद्य महत्वपूर्ण है। इसका आकार प्रकार ढाक जैसा होता है लेकिन ढाक से यह छोटा होता है। यह वाद्य दोनों ओर से चमड़े से मढ़ा होता है। बीच का भाग सँकरा तथा दोनों मुखों पर क्रमशः इसकी गोलाई बढ़ जाती है। बीच में दो रस्सी की लड़ी जिसके ऊपरी भाग पर गांठ बंधी होती है। हाथ हिलाने पर ये गांठे चमड़े से टकराती हैं, जिससे डम–डम डम की आवाज होती है।।

डेहरू

बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड के झांसी तथा सागर क्षेत्र के बाल्मीकि जाति के लोग इस अवनद्ध वाद्य का उपयोग करते हैं। यह देखने में ढाक जैसा ही होता है पर इसका खोल लकड़ी का होता है। जिसके दोनों और कनेर की पतली लकडी में चमड़ा मढ़ा होता है। एक हाथ से इसकी रस्सियों को पकड़कर खिंचाव पैदा करते हैं तथा दूसरे हाथ से मेंहदी की अर्द्धचन्द्राकर लकड़ी से इस बजाते हैं। इसे डेरू भी कहते हैं।

ढपली

ढपली लकडी या स्टील की चादर से निर्मित गोल घेरे में मढ़ी होती है। ढपले से कुछ छोटी आकार की होती है। इसे ढपलिया भी कहते हैं। लोक कलाकारों द्वारा नृत्य एवम् गायन के समय इस वाद्य यन्त्र का प्रयोग किया जाता है।

ढपला

यह चमार जाति का मुख्य लोकवाद्य है। जिसे मांगलिक अवसर पर गीत–नृत्य के साथ बजाया जाता है। यह लकडी की आठ बराबर लंबाई, चौड़ाई और मोटाई वाली पाटियों को मिलाते हुए अष्ट भुज बनाते हैं। एक ओर चमड़ा मढ़कर दूसरी ओर तान्त से जालीनुमा बुन देते हैं। 6 से 8 इंच लम्बे 3 से 5 इंच चौड़े एवम् आधा पौन इंच मोटी लकड़ी की पाटियाँ प्रयोग में लाते हैं। कुछ ढपले षट्कोणीय भी होते हैं। इसको चढाने के लिए धूप या आग दिखाई जाती है। बुन्देली जन इसे धार्मिक अवसरों तथा सन्स्कारों पर बजाते हैं। ढपले पर बजती कहरवा ताल कर्णप्रिय लगती है।

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

ताशा / तासा / तांसा

ताशा चपटे कटोरे नुमा वाद्य है। जो लोहे, पीतल, तांबे या लोहे की चादर का तसलेनुमा अथवा मिट्टी का बना होता है। इसका व्यास लगभग 24 सेन्टीमीटर होता है। इसके मुँह पर बकरे की खाल मढ़ी जाती है। खाल को डोरियों, रस्सी या तान्त की अथवा बदि्दियों से कस दिया जाता है। इसमें एक डोरी बाँधी जाती है। गले में लटकाकर, मुँह को आगे करके दो पतली तथा चिकनी लकड़ियों या बांस की खपच्चियों द्वारा इसका वादन होता है। यह सुगम सन्गीत (लोकसन्गीत) तथा लोकनृत्य के साथ बजाया जाता है। इसके साथ ढोल और झाँझ बजाये जाते हैं।

इसकी आवाज तेज व कर्कश होती है। ऊँची आवाज़ के कारण इसकी आवाज दूर तक सुनाई देती है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में यह वैवाहिक तथा धार्मिक अवसरों और मुनादी के लिए बजाते है।

धौंसा

धौंसा नौबत के आकार प्रकार जैसा किन्तु कुछ छोटा होता है। तांबे, पीतल या मिट्टी के नादनुमा बड़े खोल के मुँह पर मोटा चमड़ा मढ़ा होता है। इसे हाथ या दो डंडों की सहायता से मंदिरों एवम् शिवालयों में आरती के समय बजाया जाता है।

नगड़िया

यह मिट्टी की कटोरेनुमा आकार जैसी होती है। मुँह पर चमड़े को तान्त की सहायता से कसा जाता है। यह आकार–प्रकार में नगाडे जैसी होती है लेकिन उससे आकार में कुछ छोटी होती है। इसे लकड़ी की सहायता से बजाते हैं। स्वर चढ़ाने के लिए धूप या आग दिखाते हैं तथा उतारने के लिए उसके मुंह को गीले कपड़े से पोंछते हैं। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में इसका प्रयोग सन्स्कारिक अवसरों, देवी–पूजन, भगतें, फागें, राई, दिवारी, जवारे तथा कजरियों आदि के अवसरों पर किया जाता हैं।

नगाड़ा तथा डिग्गी

नगाड़ा यह जोडी का वाद्य है। नगाड़ा साधारणतः उत्तर भारत में सर्वत्र दिखाई देता है। इसे नक्कारा भी कहा जाता है। शहनाई वादन के साथ प्रायः नक्कारा ही बजाया जाता है। यह वाद्य कटोरे के आकार का होता है। इसके दो भाग होते हैं। नीचे से बन्द और ऊपर से खुला। यह चमड़े से मढ़ा जाता है। चमड़े की डोरियों या बदि्दयों से कसा जाता है। छोटे भाग के मुख पर चढाया जाने वाला चमड़ा पतला और बड़े मुख पर चढ़ाया जाने वाला चमड़ा मोटा होता है। नगाडा जोड़ी दोनों हाथों में कमचियाँ (चिकनी तथा बारीक लकड़ी) पकड़कर बजाई जाती है। सीधे हाथ की ओर छोटा तथा बाये हाथ की ओर बड़ा रखा जाता है। कहीं–कहीं छोटे भाग को झील कहा जाता है। बड़े भाग का नाद नीचा और गम्भीर तथा छोटे भाग का नाद ऊंचा होता है।

भगवान की आरती, पूजा में नगाड़ा का प्रायः प्रयोग किया जाता है। यह नांद के आकार का मिट्‌टी या लकड़ी का बना होता है। इसके ऊपरी भाग पर तान्त की सहायता से चमड़ा मढ़ा होता है। जिसे डंडियों की सहायता से बजाते हैं। बोल निकालने के लिए टिमकी के आकार तथा उससे कुछ गहरी चमड़ा मढ़ी डिग्गी होती है। जिसे नगाड़े के पार्श्व में रखकर (नगाड़े तथा डिग्गी को) इंडरी पर थोड़ा तिरछा रखकर बजाते हैं। डिग्गी, नगाड़े की सहायिका होती है। इसको चढ़ाने के लिए आग पर सेंकते हैं। नौटंकी में नगाड़े के साथ रखकर बजाते हैं।

नौबद

मिट्‌टी, पीतल या तांबे के नांदनुमा काफी बड़े खोल के मुंह पर मोटा चमड़ा मढ़ा होता है। दो डंडों के द्वारा इसे बजाया जाते हैं। इसकी आवाज गम्भीर होती है। राजा–महाराजाओं के महलों तथा युद्ध के अवसरों पर इसका वादन किया जाता था। मंदिरों में भी आरती के समय नौबद की तेज आवाज सुनी जा सकती है।

चंग

चंग बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड का अत्यत्न प्रिय वाद्य है। यह पीतल तांबा अथवा निकिल का गोल घेरा होता है। इसके एक ओर चमड़ा मढ़ा होता है, जिसे धातु के हुकों द्वारा फंसाया जाता है। इस पर दाहिने हाथ से थाप देते है तथा बाएं हाथ की अंगुलियों में पीतल या लोहे के छल्ले से मोखले पर आघात करते हैं।

ख्याल व लावनी गायकों का यह प्रिय वाद्य है।

खजड़ी

बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में इसका वादन भजन, ढिमरियाई, तथा रावला आदि नृत्यों में किया जाता है। यह लकड़ी के 6 से 8 इंच व्यास का खोल होता है। जिसकी चौड़ाई 2 से 3 इंच तथा मोटाई आधा से पौन इंच तक होती है। इसके एक ओर "गोह" का चमड़ा मढ़ा होता है। चौड़ाई वाले हिस्से में तीन–चार जगह घुघरु या धातु के छल्ले होते हैं। इसे बांए हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ से बजाते हैं।

नाहर धौंकनी

शेर को बुन्देली में नाहर कहते हैं। इस दुर्लम वाद्य से नाहर जैसी आवाज होती है इसलिए इसे नाहर–घौंकनी कहते हैं। मिट्टी के मटके के मुँह पर चमड़ा बान्ध, बीचोबीच एक छेद करते हैं, जिसमें मोर के पंख को जड़ की ओर से अंदर डालकर फंसाते हैं। हाथ को पानी से गीला कर मटके के मुँह के नजदीक से मोर पंख पर जड़ से पंख की ओर सरकाने पर इस वाद्य की दहाड़ सुनाई देती है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में तन्त्र–मन्त्र तथा आधिभौतिक शक्तियों की पूजा–उपासना करने वाल लोग इसे बज़ाते हैं।

घन वाद्य

वे वाद्य जो टकराकर या किसी वस्तु से आघात कर बजाये जाते हैं, घन वाद्य कहलाते हैं। घन वाद्य, ताल–वाद्य भी कहलाते हैं। इसे "आधा साज" कहा जाता है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड झांझ, मंजीरा, खड़ताल, चिमटी, चटकोला, घुंघरू, लोटा, घड़ा आदि घनवाद्य के रूप में प्रयोग किये जाते हैं।

झांझ

अत्यन्त प्राचीन ताल–वाद्य है। परन्तु इसके आकार–प्रकार में थोड़ा परिवर्तन होता रहा है। छोटी झाँझ लगभग दो इंच व्यास की होती है। लोक वादकों एवम् लोक गायकों में इसका बहुत प्रचलन है। इसका उल्लेख भरत मुनि के नाट्य शास्त्र, बौद्ध–साहित्य, रामायण, महाभारत आदि पुस्तकों में "झर्झर" के रूप में मिलता है। यह मंजीरें के आकार–प्रकार का लेकिन बहुत बड़ा होता है। इसका व्यास आठ अंगुल से लेकर सोलह अंगुल तक होता है। पीतल अथवा कांसे से बने इस वाद्य के मध्य गहराई वाले भाग में छेद होता है, जिसमें डोरी डालकर गांठ बान्ध दी जाती है। बाहरी डोरी में कपड़े को मोटा बान्धकर दोनों हाथो से झांझ के जोड़े को टकराकर ध्वनि पैदा की जाती है।

मंजीरा

झांझ का छोटा स्वरूप मंजीरा कहलाता है। मंजीरा प्रसिद्ध ताल वाद्य है। चार अंगुल व्यास का छिछला, कटोरेनुमा, गोलाकार यह वाद्य फूल, पीतल, कांसा तथा अष्ट धातु का बना होता है। गहराई के बीचोबीच एक छिद्र होता है, जिसमें सुतली या डोरी पिरोई जाती है। इसकी डोरी को हाथ में लपेटकर जब आपस में टकराकर बजाते हैं तो मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का प्रायः देवी–देवताओं की स्तुति, भजन, आल्हा, फाग आदि गीतों के साथ बजाया जाता हैं।

कसावरी

यह कांसे की घातु से निर्मित थाली की आकृति का कांस्य वाद्य है। इसका आकार थाली से छोटा होता है, पर ऊपर छेद करके पकड़ने के लिए एक छोटी रस्सी लगी रहती है। रस्सी को एक हाथ से उठाकर, लकड़ी की पतली छड़ी के टुकडे से पीटकर इसे बजाते हैं।

लोटा

यह कांसे का होता है। इसे सिक्के से बजाया जाता है। इसका प्रयोग प्रायः मांगलिक, सन्स्कारादि गीतों को गाते समय स्त्रियां करती हैं।

घट–घड़ा

काली मिट्टी से निर्मित इसका मुंह अन्य घड़ों की अपेक्षा छोटा होता है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का प्रयोग विशेषतः कुम्हार, कहार तथा चमार जाति के लोग अपने जातीय गीतो को गाते समय करते हैं। इससे मधुर ध्वनि निकलती है। वादक अपनी बांई हथेली को मटके के मुख पर रखकर थाप देता हैं तथा दाहिने हाथ से सिक्के या अन्य धातु के टुकड़े से घड़े के मध्य भाग पर आघात करता हैं।

चिमटा

इस घन वाद्य का आकार चिमटे की तरह होता है। पट्टियों के बीच में झंकार के लिए लोहे की गोल–गोल पत्तियाँ लगी रहती हैं। बाएं हाथ में एक ओर से चिमटा पकड़कर दाहिने हाथ से अंगूठा और अंगुलियों के झटके से इसे बजाया जाता है। इसे लोक कलाकार भजन–कीर्तन गाते समय बजाते हैं।

लोहे की 2 से 3 फुट लम्बी साधारण मोटी दो पत्तियाँ जो आपस में मोड़ द्वारा जोड़ दी गई हो, तथा मोड़ में लगभग 4 इंच व्यास का एक कड़ा फंसा हो जो उसे चिंपिया या चिमटा कहते हैं। इसका वादन दोनों पत्तियों के अग्रभाग को आपस में टकराकर तथा झटके के साथ कड़े को पत्तियों पर टकराकर करते हैं। इससे नाद युक्त ध्वनि नही अपितु केवल खट–खट, झन–झन की ध्वनि उत्पन्न होती है। लोकवाद्यों में इसका प्रयोग अधिक होता है। साधु–सन्यासी अपने गीत गायन में इसका उपयोग लय–धारणा के लिए करते हैं।

करताल/कठताल या खडताल

करताल वाद्य यन्त्र को खड़ताल शब्द से भी जाना जाता है। यह वाद्य यन्त्र 9–10 इन्च लम्बे तथा 2, 2 इन्च चौड़े लकड़ी के दो टुकड़े होते हैं। इसमें दो स्थानों पर पीतल की छोटी–छोटी दो झांझियां लगाई जाती हैं। इसे दोनों हाथों से पहनकर बजाया जाता हैं। बांए वाले टुकड़े के मध्य अंगूठा तथा दाहिने वाले टुकड़े के मध्य हाथ की शेष चारों अंगुलियों को डालने की जगह बन जाती है। अंगूठे तथा अंगुलियों में पहने इन टुकड़ों को आपस में टकराते हैं, जिससे छन–छन की ध्वनि होती है। लोक कलाकार रामायण गाते समय तथा हरि कीर्तन करते समय इसे बजाते हैं।

घुंघरू

घुंघरू कांसे की धातु से बना भीतर से खोखला तथा नीचे की ओर कटा छोटी गोलियों की आकृति का होता है। इसके अन्दर मोटी मटर के दाने जैसे लोहे के गोल टुकड़े होते हैं, जो हिलाने से बजते हैं। इन घुंघरूओं को डोरी में पिरोकर चमड़े या कपड़े के पट्टे पर टांक कर, पैर में बान्धने योग्य बना लेते हैं। कई वादक इसे हाथ में बान्ध कर, अपने वाद्य यन्त्र जैसे ढोलक, खंजड़ी आदि को भी बजाते हैं।

सुषिर–वाद्य

जो वाद्य–यन्त्र फूक कर बजाया जाता है अथवा जिस वाद्य यन्त्र में वायु के दबाब को ही घटा–बढ़ाकर स्वर ऊँचा–नीचा किया जाता है, उन्हें सुषिर वाद्य कहते हैं। डा0 राधेश्याम जयसवाल का मत है कि सुषिर–वाद्य लोक वाद्य हैं, लोक में निर्धनता अधिक है अतः सस्ते एवम् सुलभ सुषिर वाद्यों को निर्धन एवम् निम्न वर्ग के लोगों ने अपना लिया। वंशी इसका अपवाद है। चरवाहों से लेकर अट्टालिका पर रहने वाले प्रेमी बंधु भी वंशी की स्वरावली का आनन्द लेते हैं। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में शंख, बांसुरी, बीन, तुरही, शहनाई, मदनभेरी, अलगोजा, रमतूला, टोंटा, पपैया, पुंगी आदि सुषिर वाद्य प्रचलित हैं।

रमतूला

यह तांबे या पीतल से निर्मित होता है। इसका आकार अंग्रेजी वर्ण के एस के समान होता है। इसकी नली तीन हिस्सों में बंटी होती हैं, जो मुंह की ओर पतली तथा मध्य और अन्त की ओर क्रमशः चौड़ी होती जाती है। सन्स्कारादि अवसरों पर जाति विशेष के लोग इसे बजाते हैं तथा एवज में नेग या पारितोषिक पाते हैं।

<u>तुरही</u>

तुरही धातु की खोखली नली से बनाई जाती है। जिसका एक किनारा चौड़े मुँह का होता है और दूसरा किनारा धीरे–धीरे पतला होता जाता है। इस वाद्य यन्त्र की लम्बाई लगभग चार हाथ की होती है। इसकी आकृति अर्धचन्द्राकार होती है बुन्देली जन प्रायः इन्हें मांगलिक अवसरों पर बजाते हैं। [3]

<u>बाँसुरी / बंशी / वंशी</u>

भारत के सुषिर वाद्यों में वंशी प्राचीन काल से वर्तमान काल तक प्रमुख वाद्य रहा है। यह वाद्य सबसे प्राचीनतम वाद्य है। महाभारत मे इसक लिए वेणु शब्द प्रयुक्त हुआ है। बांसुरी, वेणु, मुरली इनके कई नाम हैं। यह मूलतः लोक वाद्य था, जिसे विकसित कर शास्त्रीय बना लिया गया।

शारंग देव ने लिखा है– यह दो हाथ लम्बी थी जिसमें एक मुख–रन्ध्र तथा चार स्वर–रन्ध्र होने के कारण ये वाद्य शास्त्रीय के अनुपयुक्त था। वंशी बनाने के लिए एक चिकना सीधा तथा बिना गाँठ के बांस का प्रयोग करते थे। इसके अलावा खैर की लकड़ी, हाथी दाँत, लालचन्दन तथा सफेद चन्दन की भी बाँसुरी बनती थी। जिसकी लम्बाई अठारह अंगुल की होती थी और उसमें कुल नौ छेद होते थे। ऐसी वंशी को ''एक वीर'' नाम से पुकारा जाता था। वंशी में द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक तथा चतुःश्रुतिक स्वरों के वादन के लिए महर्षि भरत, आचार्य शारंगदेव आदि ने विधान बताये हैं। इस वाद्य का उपयोग लोक सन्गीत में होता था। कालान्तर में इसमें सात स्वर विकसित कर इसे शास्त्रीय बना लिया गया, फलतः इसका वादन शास्त्रीय तथा लोक जन में समान रूप से करते हैं।

बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में इसका वादन दिवारी, राई, रतिया तथा फाग आदि पर किया जाता है। इसकी आवाज गम्भीर तथा मधुर होती है। यह बांस, लकड़ी, चन्दन, हाथी दांत, लोहा. कांसा, पीतल. चाँदी, अथवा सोने की बनाई जाती है। यह मुंह से फूंककर बजाई जाती है। इसका तीन भाग

(1) मुख नलिका (2) नली तथा (3) नली के ऊपर

समान अन्तर पर छिद्र होते है। साधु मदारी लोग भी इसका उपयोग करते देखे जाते हैं।

<u>अलगोजा</u>

अलगोजा का आकार बांसुरी जैसा ही होता है। अलगोजा में प्रायः दो बांसरी एक साथ होती हैं, जिन्हें एक साथ मुंह में दबाकर फूँक से बजाया जाता है। इसकी दोनों नलियों में चार–चार छिद्र होते हैं। ये दोनों नली के ऊपर की ओर डोरी से बंधी रहती है। दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। लोकवासी गौचरों को चराते समय या किसी मेले आदि के अवसर पर इसका वादन करते हैं। इसके वादन में बड़ी निपुणता की आवश्यकता है।

<u>शहनाई</u>

शहनाई मांगलिक कार्यो में दरवाजे पर बजाना शुभ माना जाता है। इसलिए इसे मांगलिक वाद्य भी कहते हैं। यह अत्यन्त प्राचीन वाद्य है। यह लकड़ी या धातु की बनी बड़ी चिलम की आकृति की होती है। इसके मुंह पर तीन, चार अंगुल लम्बी तांबे या पीतल की नली लगी होती है, जिसके मुख पर ताड पत्र या कांसे की दो पत्तियाँ दूध में भिगोकर लगाई जाती हैं। इसके उपर समान अन्तर पर छिद्र बने होते हैं। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में इस वाद्य का प्रयोग शादी विवाह, उत्सव तथा लोक नाट्यों में किया जाता है इसका स्वर अत्यत्न मधुर व कर्णप्रिय होता है।

शहनाई, नफीरी, नागस्वरम जो शहनाई के ही छोटे–बड़े रूप है, हमारे देश में मांगलिक वाद्य माने जाते हैं। दक्षिण में नागस्वरम् का तो मन्दिरों के साथ भी अभिन्न सम्बन्ध है।

<u>मदनभेरी</u>

यह पीतल तथा धातु से निर्मित एक लम्बी नली होती है जो ऊपर की ओर पतली तथा नीचे क्रमशः चौड़ी और गोलाकार होती जाती है। युद्ध की सूचना, सेना के प्रस्थान तथा राजाओं की सवारियों के निकलने पर इसका प्रयोग होता था। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में इसका वादन राजा–महाराजाओं के यहाँ मांगलिक अवसरों पर होता था। अब इसका प्रयोग यदा–कदा ही दिखाई देता है।

<u>बीन</u>

बीन सपेरों का यह प्रिय वाद्य यन्त्र है। जनश्रुति है कि इसकी ध्वनि में सांप को मोहित करने की अदभुत क्षमता होती है। बीन, तुम्बे या लौकी के खोल की बनी होती है। तुम्बी के पृष्ठ भाग में बांस या लकड़ी की नली होती है, जिस पर बांसुरी की तरह समान अन्तर पर छिद्र बने रहते हैं। इसकी लम्बाई लगभग सवा हाथ की होती है।

<u>शंख</u>

यह एक आदि वाद्य है। यह देव वाद्य माना जाता है। शंख का समस्त धार्मिक अनुष्ठानों, पूजन आदि में प्रयोग किया जाता हैं। पाचीन भारत में युद्ध एवम् शान्ति की घोषणा इसके द्वारा की जाती थी। शंख समुद्र में रहने वाले जीव विशेष का खोल है। बनावट के अनुसार दक्षिणावर्त तथा वामावर्त इसकी दो जातियां है। यह अन्दर से खोखला व अन्दर से बाहर तक घुमावदार होता है। इसके मुख पर फूँक मार कर इसे बजाते है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में भागवत–कथा आदि के आरम्भ एवम् अन्त में इसका बजाना आवश्यक माना जाता है। भगवान की आरती तथा भोगादि में इसका प्रयोग किया जाता है।

<u>टोंटा</u>

फूंककर बजाया जाने वाला यह वाद्य मंगल वाद्य की श्रेणी में आता है। छः छिद्र वाले इस वाद्य का आकार ऊपर की पतला तथा नीचे की और क्रमशः मोटा तथा गोल होता जाता है। इसके मुह में लोहे का एक ढक्कन सा लगा बजाते हैं जिसका मुख भाग वाद्य से जुड़ा होता है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड के कहार जाति के लोग इसे बजाते हैं। इस दृष्टि से यह जातीय वाद्य भी है। है। विभिन्न सन्स्कारोत्सव पर जाति विशेष के लोग घर–घर जाकर इसे बजाते हैं।

<u>पपैया</u>

यह बच्चों का प्रिय वाद्य है। इसे फूंकने पर पी–पी की आवाज आती है। पपैया आम की गुठली का बनता है। गुठली के छिलके के नीचे का मुलायम हिस्सा निकाल कर पत्थर पर घिसा जाता है, जिससे गुठली का अगला भाग घिसकर पतला हो जाता है तथा दोनों दलों के बीच पतली खोखली जगह हो जाती है। बच्चे इससे अपना मनोरंजन करते है। फूंकने पर इसमें पी–पी की आवाज निकलती है।

<u>पुंगी</u>

बरगद, पीपलया ताड़ के पत्तों से बनाई जाती है। पत्तों को गोलाई में मोड़कर इसके पतले हिस्से को दबा देते है। फूंकने पर इसमें पी–पी की आवाज निकलती है। बान्दा क्षेत्र व बुन्देलखण्ड में आज भी बच्चों को इसे बजाते हुआ देखा जाता है।

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

सन्दर्भ/साभार/ सौजन्य
सान्स्कृतिक अयोध्या प्रसाद कुमुद
2015ए269421ए बुन्देलखण्ड के वाद्य यन्त्र .1.213 `मम चंहम 152
2015ए269019एहिन्दी के उपन्यासो में बुन्देलखण्ड
(1) सन्गीत–शास्त्र के0 वासुदेव शास्त्री पृ282
(2) सम्पादक लक्ष्मी नारायण गर्ग सन्गीत मासिक पत्रिका आप्रैल 1958, पृ36
(3) भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास डॉ0 राधेश्याम जायसवाल पृ150